भारतीय शिक्षा एवं संस्कृति का अवलोकन

प्रो0 कमल प्रसाद बौद्ध

संकायाध्यक्ष, शिक्षा विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

शोध सार

शिक्षा,व्यक्ति और राष्ट्र के निर्माण की प्रणाली है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति का सर्वांगीण विकास होता है। इस विकास क्रम में सामाजिक और राष्ट्रीय मूल्य उसके व्यक्तित्व में समन्वित होते हैं। शिक्षित होकर व्यक्ति समाज और राष्ट्र का सदस्य बनता है। व्यक्ति के इस विकास को पूर्णत: व्यक्तिगत कहना उचित नहीं है। व्यक्ति इस विकास का केन्द्र अवश्य होता है, किन्तु इस विकास की परिधि समाज और राष्ट्र में फैलती है। व्यक्तियों के विकास की परिधियाँ मिलकर ही राष्ट्र का मण्डल बनाती है, जिसके अन्तर्गत व्यक्ति का अस्तित्व सार्थक होता है। मुख्यत: शिक्षा विद्योपार्जन ही है, यद्यपि शिक्षा शास्त्रों में उसे व्यक्ति का सर्वांगीण विकास कहा जाता है। इस सर्वांगीण विकास में ज्ञान के अतिरिक्त भाव, कर्म, चरित्र, कला, राष्ट्रीयता आदि का विकास भी सम्मिलित किया जाता है। विकास के ये पक्ष पूर्णत: व्यक्तिगत नहीं होते। ये सामाजिक और राष्ट्रीय मूल्यों के समन्वय से ही सम्पन्न होते हैं। इस प्रकार व्यक्ति के विकास के माध्यम से शिक्षा राष्ट्र का निर्माण करती है।

शब्द कुंजी: राष्ट्रीयता मूल्य, दर्शन एवं साहित्य, राष्ट्र निर्माण, संस्कृति, आध्यात्मिक, व्यक्तित्व निर्माण

Received : 18/9/2025 https://doi.org/10.5281/zenodo.18258374 Acceptance : 29/11/2025

मानवता अथवा विश्व समाज के निर्माण को शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य कहा जा सकता है। शिक्षा के शास्त्र इस लक्ष्य का प्रतिपादन करते हैं, किन्तु विश्व के राष्ट्र अभी अपनी राष्ट्रीय सीमाओं में ही बंधे हुए हैं। अत: विश्व मानवता का निर्माण अभी शिक्षा का केवल सैद्धान्तिक लक्ष्य बना हुआ है। व्यावहारिक दृष्टि से सभी देशों की शिक्षा अपने राष्ट्र के निर्माण को ही अपना लक्ष्य मानकर चल रही है।

यह नि:संकोच रूप से माना जा सकता है कि देश में 1990 का दशक प्रारंभिक शिक्षा के विकास के लिए सर्वाधिक गतिशीलता का काल रहा है। इस क्षेत्र में किए गए प्रयासों की रूपरेखा राष्ट्रीय शिक्षा नीति -1986 की सिफारिशों पर निर्धारित थी। 1990 में जोमेतियन में बुनियादी शिक्षा के लिए वैश्विक घोषणा से इन प्रयासों को व्यापक रूप से प्रोत्साहन और समर्थन मिला। इस दौरान प्रारंभिक शिक्षा और साक्षरता के क्षेत्रों में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त हुई। उदाहरणार्थ, इस दशक में प्राथमिक स्कूलों और उच्च प्राथमिक स्कूलों में क्रमश: 14% और 36% की वृद्धि हुई, 243 लाख नए विद्यार्थियों का नामांकन हुआ, 1,30,0000 नए विद्यालय खोले गए और 5,40,000 नए अध्यापकों की नियुक्ति की गई। इस दौरान प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर पर बालिकाओं के नामांकन में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई। प्राथमिक स्तर पर बालिका-नामांकन कुल नामांकन का 40: से बढ़कर 44: हो गया। इसी प्रकार उच्च प्राथमिक स्तर पर भी बालिका-नामांकन 38% से बढ़कर 40% हो गया। इसके साथ ही इस दशक में साक्षरता दर में भी 13. 1% की उल्लेखनीय वृद्धि हुई। (1991 में साक्षरता 52.2: थी जो बढ़कर 65.4% हो गई) स्वतंत्रता-प्राप्ति के पचास वर्ष बाद पहली बार निरक्षरों की कुल संख्या में 320 लाख की कमी आई, 1990 के दशक में सरकार के शिक्षा व्यय में भी वृद्धि हुई। इस दशक के आरंभ में सरकारी शिक्षा व्यय सकल घरेलू उत्पाद का 3.84% था जो बढ़ कर 4. 11% हो गया। इन प्रयासों के साथ-साथ शिक्षा को अधि कार के मुद्दे पर व्यापक तथा गहन रूप से विचार-विमर्श हुआ, जिसके परिणामस्वरूप संविधान में संशोधन के द्वारा प्रारंभिक शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार घोषित करने का ऐतिहासिक निर्णय लिया गया। हमारे सम्मुख आने वाले वर्षों में इस अधिकार को कारगर बनाने के लिए आवश्यक कानून बनाने और कार्यान्वयन की कार्यनीति विकसित करने की बड़ी चुनौती है।

नई सहस्राब्दि में राष्ट्रीय और अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर नए परिप्रेक्ष्य और संभावनाएं पैदा हुई हैं। डकार विश्व सम्मेलन 2000 में सबके लिए शिक्षा (स0 लि0 शि0) की कार्य योजना इसके नवीन कार्यकारी बिन्दुओं को प्रस्तुत करती है । इसके साथ-साथ देश में सबके लिए शिक्षा से संबंधित नीतियां और कार्यक्रमों को मजबूत बनाने

के लिए प्रभावी कदम उठाए गए हैं। इस दिशा में सर्व शिक्षा अभियान (स0 शि0 अ0) भारत सरकार का एक फलैगशिम (सहयोजित) कार्यक्रम है, जिसमें स0 लि0 शि0 का लक्ष्य 2010 तक पूरा करने का लक्ष्य है। राष्ट्रीय साक्षरता आयोग की संशोधित कार्य योजना में 2001 तक 75% साक्षरता दर प्राप्त करने का लक्ष्य रखा है। यह दस्तावेज स॰ लि॰ शि॰ के लक्ष्यों को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है, ताकि इन लक्ष्यों की प्राप्ति हर प्रकार से सुनिश्चित हो सके। प्रस्तुत दस्तावेज में राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुसार प्रारंभिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण, निरक्षरता का उन्मूलन तथा संबंधित पक्षों की जुड़ी नीतियों और कार्यक्रमों को डकार कार्य योजना के अन्तर्गत निर्धारित स॰ लि॰ शि॰ लक्ष्यों के सापेक्ष एकीकृत करके प्रस्तुत किया गया है। संघीय प्रणाली के अन्तर्गत शासित भारत जैसे विशाल लोकतांत्रिक देश में 35 राज्य/संघीय क्षेत्र हैं, जिनकी शैक्षिक आवश्यकताओं में काफी विविधता है। ऐसी स्थिति में स॰ लि॰ शि॰ की राष्ट्रीय कार्य योजना तैयार करना आसान नहीं है। राष्ट्रीय कार्य योजना में इन अन्तर्राज्यीय विविधताओं पर ध्यान रखना आवश्यक है। इसके अलावा, नागरिक, समाज, संगठन देश भर में बड़े पैमाने पर शैक्षिक गतिविधियों से जुड़े हैं। इन संगठनों के विचारों को भी राष्ट्रीय कार्य योजना में पर्याप्त जगह देना जरूरी है । इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न राज्यों के शिक्षा विभागों और गैर-सरकारी संगठनों के दृष्टिकोणों को जानने और समझने के लिए चार क्षेत्रीय परामर्श बैठक आयोजित की गई। इसके अलावा एक राष्ट्रीय परामर्श बैठक भी आयोजित की गई, जिसमें गैर-सरकारी संगठनों के प्रतिनिधि और शिक्षाविद् एवं शिक्षा कर्मी भी आमंत्रित किए गए ।

स0 लि0 शि0 योजना कार्यान्वयन, अनुश्रवण और समीक्षा एवं समग्र नियोजन प्रक्रिया के महत्वपूर्ण दौर की शुरूआत को अभिव्यक्त करती है। देश में 600 जिलों में जिला प्रारंभिक शिक्षा योजनाएँ हैं। यह समय प्रक्रिया शैक्षिक नियोजन प्रयास, विशेषकर जिला स्तरीय नियोजन प्रक्रिया की प्रतिपुष्टि करेगी। यह योजना केन्द्र सरकार, राज्य सरकारों, स्थानीय निकायों, ग्राम-शिक्षा समितियों, विद्यालय प्रबन्ध समितियों/अभिभावक-अध्यापक संघ, माता-अध्यापक संघ, विश्वविद्यालयों एवं शिक्षाविदों, नागरिक समाज संगठनों के संयुक्त प्रयास से वास्तविक रूप में राष्ट्रीय योजना सिद्ध होनी चाहिए। हमारी शिक्षा एक उन्नतिशील राष्ट्र का निर्माण करने में सफल हो, इसके लिए हमें शिक्षा के मूल तत्वों को तथा अपनी शिक्षा प्रणाली के मौलिक दोषों को समझना होगा । शिक्षा के माध्यम के साथ राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति के द्वारा ही भारत अन्य देशों की भाँति उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है ।

शिक्षा की व्यापक परिधि में संस्कृति का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है। हमारी शिक्षा की वर्तमान धारणा में संस्कृति अभी तक स्वतंत्र विषय का स्थान नहीं पा सकी है, यह एक महान और प्राचीन संस्कृति के अभिमानी देश की शिक्षा की विडम्बना है। संस्कृति इतिहास के अतीत वृत का एक अंग मात्र मानी जाती है और प्रायः उसे भारत के प्राचीन इतिहास के अध्ययन का एक अंग बना दिया गया है । अतीत के ऐतिहासिक अवशेषों की भांति संस्कृति भी केवल हमारे संरक्षण और कौतूहल का विषय मात्र रह गई है।

एक प्राचीन और महान संस्कृति के उत्तराधिकारी भारत के शिक्षाशात्रियों ने कभी यह विचार नहीं किया कि संस्कृति मनुष्य के सभ्य जीवन का पर्याय है। इतिहास अथवा किसी अन्य विषय का एक अंग बनाना तो संस्कृति को अत्यन्त तुच्छ बनाना है । सम्पूर्ण संस्कृति को कम-से-कम शिक्षा के पाठ्यक्रम में एक स्वतंत्र और सम्पूर्ण विषय का स्थान तो अवश्य देना चाहिए। वह एक समग्र विषय है और शिक्षा के पाठ्यक्रम में एक स्वतंत्र और सम्पूर्ण विषय के रूप में उसका अध्यापन आवश्यक है। संस्कृति को केवल कला, धर्म, दर्शन, साहित्य आदि का संकलन मानना भी उचित नहीं है। ये सब संस्कृति के अंग अवश्य हैं, किन्तु वह इन अंगों का संघात मात्र नहीं है। संस्कृति का अपना स्वरूप और उसके अपने सिद्धान्त हैं। इस पर शोध होना चाहिए। कला, धर्म, दर्शन, साहित्य आदि के अतिरिक्त संस्कृति का जीवन रूप भी है जो लोक-जीवन के साथ समवेत हो गया है। इसे हम लोक संस्कृति कह सकते हैं जो सभ्यता के विकास के साथ-साथ एक ऐतिहासिक कौतूहल की वस्तु मात्र रह गयी है। किन्तु भारत की जीवन्त लोक संस्कृति पर्व, व्रत, त्योहार, संस्कार, उत्सव आदि के रूपों में सभ्य नागरिक समाज की विभूति बनी हुई है।

शिक्षा संस्कृति का एक अंग है। संस्कृति की आत्मा से अनुप्राणित होकर ही शिक्षा सफल हो सकती है। संस्कृति मनुष्य के स्वभाव का संस्कार है। उस संस्कार के अनेक रूप हैं। उनमें शिक्षा भी एक रूप है। संस्कृति का अर्थ सम्यक् कृति है। कृति का अर्थ निर्माण है। शिक्षा मनुष्य का निर्माण करती है। सम्यक् तथा साम्यपूर्ण होने पर

वह भी संस्कृति का एक रूप बन जाती है। ऐसी शिक्षा ही सार्थक एवं सफल होती है। ज्ञानोपार्जन की क्रिया से मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। यह निर्माण ही शिक्षा की कृति है। यह जीवन का निर्माण है जो जीवन के व्यापक सूत्रों के द्वारा ही हो सकता है।

साक्षरता शिक्षा का एक अंग है। वर्त्तमान युग में ज्ञानी, पंडित और विज्ञ होने के लिए साक्षरता की परम आवश्यकता है। पहले बालक निरक्षर से साक्षर होता है, फिर साक्षर से पाठक होता है और अन्त में वही पाठक से पंडित हो जाता है। पांडित्य की चोटी पर पहुंचने के लिए साक्षरता का सहारा लेना ही पड़ता है। साक्षरता प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक है। आज की दुनिया विज्ञान और जागृति की दुनिया है। प्रत्येक व्यक्ति स्वभावतः वर्त्तमान जगत की बातों को जानने के लिए उत्सुक रहता है। साक्षर/वर्त्तमान युग का एक विरोधाभास यह भी है कि संसार के लोग भौतिक दृष्टि से एक-दूसरे के निकट पड़ोस में रहते हुए भी आध्यात्मिक और मानसिक दृष्टि से एक-दूसरे से दूर और अलग-अलग रह रहे हैं। यदि विभिन्न पृष्ठभूमियों और दृष्टिकोण वाले लोग एक-दूसरे के साथ मिलकर निर्वाह करना न सीखें, तो उनमें संघर्ष का होना अनिवार्य है। आधुनिक युग में यदि कोई संघर्ष हुआ, तो वह अवश्य ही सर्वनाशकारी होगा । यदि सभी समाज अपने दृष्टिकोणों और स्वभाव में कुछ आवश्यक सामंजस्य करने को तैयार न हो, तो संघर्ष अनिवार्य है, इसलिए शिक्षा का कार्य ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करना चाहिए, जिनमें सामंजस्य और परिष्कार बिना किसी उपद्रव के किया जा सके। इसके लिए यह आवश्यक है कि हमारी जागृति विज्ञान के साथ-साथ दर्शन एवं साहित्य की ओर भी हो। आज यह बहुत अनिवार्य है कि दर्शन एवं साहित्य को भी उतना ही महत्व दिया जाये, जितना कि विज्ञान को। ये विषय हमें सामंजस्य करना सिखाते हैं साथ ही हमारे जीवन को सार्थक भी बनाते हैं। इसलिए हमारा ध्यान जितना साक्षर करने की ओर है, उतना ही जीवन को सार्थक करने की ओर भी होना चाहिए। कहा गया है कि पोथी का कुँआ डुबोता भी नहीं और पोथी की नैया तैरती भी नहीं। पुस्तक में अर्थ नहीं रहता, अर्थ दृष्टि में रहता है। जब यह बात बुद्धि में आयेगी तभी सच्चे ज्ञान की पहचान होगी।

एक शिक्षक होने के नाते इस समाज के प्रति मेरे कुछ दायित्व भी है। मैं नहीं जानता कि इस दायित्व का निर्वाह मैं भली-भाँति कर पाता हूँ कि नहीं, लेकिन इतना जरूर है कि जब शिक्षा की निरन्तर बदहाल होती हुई स्थिति को देखता हूँ तो मन में ग्लानि से भर जाता है। दृश्य सामने आने लगती है, प्राचीन संहिताओं की वे बातें जब विश्व के तमाम देश पाषाण युग में पदार्पण भी नहीं किए थे, तब भारत के लोग प्रभात का शुभारम्भ शंखध्वनि से करते थे।

निष्कर्षः

जीवन के लिए जल की आवश्यकता है, उसी तरह व्यक्तित्व के विकास के लिए शिक्षा की आवश्यकता है, लेकिन यहाँ यह भी ध्यान रखना होगा कि यह शिक्षा हमें हमारी संस्कृति से दूर न ले जाए, अपनी पहचान खोने को मजबूर न करे और न ही विवेकशील बनाने की जगह उच्छृंखल बनाए। इसके लिए हमें पूरा प्रयास करना चाहिए, ताकि हम पुरानी खोई हुई गरिमा को पुनः प्राप्त कर सकें और एक बार फिर यहाँ की सोंधी मिट्टी से ज्ञान, शांति व प्रेम का संदेश गूंज उठे। शिक्षा संस्कृति का एक अंग है। संस्कृति की आत्मा से अनुप्राणित होकर ही शिक्षा सफल हो सकती है। संस्कृति मनुष्य के स्वभाव का संस्कार है। उस संस्कार के अनेक रूप हैं। उनमें शिक्षा भी एक रूप है। संस्कृति का अर्थ सम्यक् कृति है। कृति का अर्थ निर्माण है। शिक्षा मनुष्य का निर्माण करती है। सम्यक् तथा साम्यपूर्ण होने पर वह भी संस्कृति का एक रूप बन जाती है। ऐसी शिक्षा ही सार्थक एवं सफल होती है। ज्ञानोपार्जन की क्रिया से मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। यह निर्माण ही शिक्षा की कृति है। यह जीवन का निर्माण है जो जीवन के व्यापक सूत्रों के द्वारा ही हो सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः

1. सबके लिए शिक्षा राष्ट्रीय कार्य योजना - भारत
2. डेवलपमेंट ऑफ एजुकेशन : 1986-1988 नेशनल रिपोर्ट ऑफ इण्डिया 1988
3. डकार लक्ष्यों की प्राप्ति : भारतीय परिप्रेक्ष्य
4. भारत और राज्यों की जनसंख्या आकलन 1996-2016
5. प्रारम्भिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण
6. बालिका शिक्षा एवं महिला सशक्तिकरण
7. सबके लिए शिक्षा - क्या विश्व प्रगति के पथ पर है। 2000 यूनेस्को